जैनदर्शन की कारण-कार्य-व्यवस्था

-प्रो. वीरसागर जैन

जैनदर्शन की कारण-कार्य-व्यवस्था को भलीभांति समझने के लिए सर्वप्रथम मैं आपका ध्यान प्राकृत-जैन-वाङ्मय के मूर्धन्य ग्रन्थ 'सम्मइसुत्तं' (सन्मतिसूत्र) की इस महत्त्वपूर्ण गाथा की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ -

" कालो सहाव णियई पुवकयं पुरिस कारणेगंता।

मिच्छत्तं ते चेव उ समासओ होंति सम्मत्तं ||" - (सन्मतिसूत्र , 53)

अर्थ- काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत (निमित्त) और पुरुषार्थ- ये पाँच कारण हैं। इनमें से किसी एक से ही कार्य मानना मिथ्यात्व है और इन सबके समवाय से मानना सम्यक्त्व है।

'सन्मतिसूत्र' की इस गाथा में जैनदर्शन की समूची कारण-कार्य व्यवस्था को बड़ी ही कुशलता के साथ समन्वित करके प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि वस्तुस्थिति ही ऐसी है, कोई भी कार्य एक कारण से उत्पन्न नहीं होता, सम्पूर्ण सामग्री ही कार्य की जनिका होती है, जैसा कि अन्य भी ग्रन्थों में स्पष्ट कहा है -

1. **" सामग्री जनिका कार्यस्य नैकं कारणम्।"**

अर्थ- कार्य की जनिका सामग्री होती है, कोई एक कारण नहीं।

2. **"न ह्येककारणप्रभवं कार्यं सामग्रीप्रभवत्वात्कार्याणाम्।"**

अर्थ- कोई भी कार्य एक कारण से उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि सभी कार्य सामग्री से उत्पन्न होते हैं।

3. **"अविकले कारणे कार्यस्योत्पत्तिः।"**

अर्थ- सम्पूर्ण कारणों के मिलने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है।

4. **"अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य"** -सर्वार्थसिद्धि, 5/17

अर्थ- एक कार्य अनेक कारणों से साध्य होता है।

5. **"इह लोके कार्यमनेकोपकरणसाध्यं दृष्टम्।"** -तत्त्वार्थराजवार्तिक, 5/17

अर्थ- इस लोक में प्रत्येक कार्य अनेक उपकरणों से साध्य देखा जाता है।

6. **"सामग्रीविकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम् ।"** –क्षत्रचूडामणि, 8/56

अर्थ- लोक में कोई भी कार्य सामग्री-रहित नहीं देखा जाता ।

7. **" ण च एक्कं कज्जं एक्कादो चेव कारणादो सव्वं सव्वत्थ उप्पज्जदि ।"** -धवला, 7 / 2 / 1

अर्थ- एक कार्य एक ही कारण से सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता ।

आचार्य समन्तभद्र ने इन अनेक कारणों को बाह्य और अभ्यंतर -इन दो भागों में विभाजित करके अनेकशः दृढतापूर्वक सिद्ध किया है कि सभी कार्य बाह्याभ्यंतर दोनों कारणों के मिलने से ही उत्पन्न होते हैं, किसी एक ही से कथमपि उत्पन्न नहीं हो सकते । यथा –

1. **"बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।"** -स्वयंभूस्तोत्र, 12/5
   अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपके मत में बाह्याभ्यन्तर कारणों की समग्रता से ही कार्यों की उत्पत्ति होना सभी द्रव्यों का स्वभाव माना गया है ।
2. **"अलङ्घयशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा । "** -स्वयंभूस्तोत्र, 7/3
   अर्थ- बाह्य और अभ्यन्तर- दोनों हेतुओं (कारणों) से उत्पन्न होने वाले कार्य से जिसका ज्ञान होता है - ऐसी यह भवितव्यता अलंघ्य है ।
3. **"यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ।"** -आप्तमीमांसा, 21
   अर्थ- प्रत्येक कार्य बहिरंग और अंतरंग दोनों उपाधियों (कारणों) से होता है ।

इसप्रकार उक्त अनेक प्रमाणों से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि एक कार्य की उत्पत्ति में अनेक कारण होते हैं, जिन्हें पंच समवाय या बाह्याभ्यंतर कारणों के नाम से जाना जाता है । अनेकान्तवादी वही है जो इन अनेक कारणों को स्वीकार करता है । और जो इन्हें नहीं स्वीकार करता, एक ही कारण से कार्योत्पत्ति मानता है वह एकान्तवादी है । यही कारण है कि 'सन्मतिसूत्र' की सबसे ऊपर उद्धृत गाथा में आचार्य सिद्धसेन ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि जो पाँचों समवाय से कार्योत्पत्ति मानता है वह सम्यग्दृष्टि है और जो एक से ही कार्योत्पत्ति मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ।

आचार्य सिद्धसेन के अनुसार तो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व में अंतर ही इतना-सा है कि एक-एक पक्षों को मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं और सभी पक्षों को माननेवाला सम्यग्दृष्टि है । देखिए, कितना सुन्दर कहा है उन्होंने-

"भद्दं मिच्छादंसण-समूह-महयस्स अमयसारस्स ।

जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ।।" -सन्मतिसूत्र, 3/70

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान के वचन संवेगी सुखाभिलाषी जीवों का कल्याण करें। कैसे हैं जिनवचन ? जो सर्व मिथ्यादर्शनों के समूह रूप या उन्हें ध्वस्त करने वाले हैं और अमृत के समान सारभूत हैं।

तात्पर्य यही है कि वस्तु-व्यवस्था में सर्व कारणों की स्वीकृति करनेवाला जीव ही सम्यग्दृष्टि और अनेकान्तवादी है।

हाँ, इतना विशेष है कि अनेकान्तवादी स्याद्वादी भी होता है। वह विवक्षावश कभी किसी एक कारण को मुख्य और अन्य कारणों को गौण कर सकता है, करता ही है, इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। मुख्य-गौण करना तो तत्त्वाधिगम का साधन कहा है। अनुचित तो तब है जब अन्य पक्षों को गौण करने की बजाय उनका अभाव ही कर दिया जाए। अपर पक्षों को गौण करनेवाला नय है, सुनय है, परंतु उनका अभाव करनेवाला दुर्नय है, मिथ्यानय है।

जैनदर्शन की कारण-कार्य-व्यवस्था को भलीभाँति समझने के लिए नय-व्यवस्था का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है, क्योंकि उसमें भी विविध गहन भंग शास्त्रों में पाए जाते हैं।

कारण-कार्य-व्यवस्था के विविध भंग

कारण-कार्य-व्यवस्था तो जो है सो है किन्तु उसका कथन-व्यवहार और भी जटिल होता है, अत: उसको भलीभांति समझने के लिए ही नयज्ञान की महती आवश्यकता बताई गई है | कारण-कार्य-व्यवस्था की कथन-पद्धति बड़ी अद्भुत है, उसमें अनेक भंग होते हैं | उदाहरणार्थ कारण-कार्य-व्यवस्था के कतिपय भंग द्रष्टव्य हैं-

1. कहीं कहते हैं कि कारण जैसा ही कार्य होगा और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
2. कहीं कहते हैं कि एक कारण से एक ही कार्य होगा और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
3. कहीं कहते हैं कि कारण अनेक हैं तो कार्य भी अनेक होंगे और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
4. कहीं कहते हैं कि एक कार्य के होने में अनेक कारण चाहिए और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
5. कहीं कहते हैं कि कारण-कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
6. कहीं कहते हैं कि कारण-कार्य एक ही द्रव्य में होते हैं और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
7. कहीं कहते हैं कि कारण है तो कार्य होगा ही होगा और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
8. कहीं कहते हैं कि कारण-कार्य पूर्वोत्तरकालवर्ती होते हैं और कहीं कहते हैं कि समकालवर्ती होते हैं |
9. कहीं कहते हैं कि कार्य के सम्पन्न होने पर कारण की निवृत्ति हो जाती है और कहीं कहते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है |
10. कहीं पांचों समवायों को मिलाकर कारण कहते हैं और कहीं उनमें से एक-एक को ही मुख्य करके उसे ही कारण कहते हैं |

11. कहीं इन पांचों को भी उपादान और निमित्त के दो भागों को विभाजित करके कारण-कार्य-व्यवस्था स्पष्ट करते हैं |
12. उसमें भी कहीं उपादान कारण को ही कारण कहते हैं, कहीं निमित्त कारण को ही कारण कहते हैं और कहीं उपादान एवं निमित्त दोनों को मिलाकर कारण कहते हैं |
13. उपादान कारण में भी कहीं त्रिकाली उपादान को ही कारण कहते हैं, कहीं क्षणिक उपादान को ही कारण कहते हैं और कहीं त्रिकाली एवं क्षणिक दोनों को मिलाकर कारण कहते हैं |
14. क्षणिक उपादान में भी कभी तो अव्यवहित पूर्ववर्ती को ही कारण कहते हैं और कभी बहुत पूर्ववर्ती को भी कारण कहते हैं |
15. इसी प्रकार निमित्त कारण में भी कहीं प्रेरक निमित्त को ही कारण कहते हैं और कहीं उदासीन निमित्त को भी कारण कह देते हैं |
16. कहीं वास्तविक कारण को ही कारण कहते हैं, कहीं उपचरित कारण को भी कारण कहते हैं |
17. कहीं किसी वस्तु के सद्भावरूप कारण को कारण कहते हैं और कहीं उसके अभावरूप कारण को कारण कहते हैं |
18. कहीं केवल 'प्राय:' कारण को ही कारण कहते हैं |
19. कहीं केवल एक कारण को ही कारण कहते हैं और कहीं उस कारण के कारणों को भी कारण कहते हैं |
20. कहीं साहित्यिक शैली से रूपक आदि बनाकर भी कारण-कार्य-व्यवस्था कहते हैं |
21. व्याकरण की भाषा में देखें तो कहीं प्राप्य कारण को कारण कहते हैं, कहीं विकार्य कारण को कारण कहते हैं और कहीं निर्वर्त्य कारण को कारण कहते हैं |
22. स्थूल-सूक्ष्म या सामान्य-विशेष कथन का भी बहुत अंतर पड़ता है |

इस प्रकार शास्त्रों में कारण-कार्य-व्यवस्था के अनगिनत भंग बताये गये हैं | सभी को उदाहरण-सहित स्पष्ट करना आवश्यक लग रहा है, किन्तु बहुत विस्तार हो जाएगा इसलिए नहीं किया है, सुधी पाठक सहजता से समझ सकते हैं | कहने का अभिप्राय कुल इतना ही है कि कारण-कार्य-व्यवस्था से भी अधिक जटिल उसका कथन-व्यवहार है और उसको भलीभांति समझने के लिए नयज्ञान की महती आवश्यकता है, उसके बिना सुलझना सम्भव नहीं है | रेडिओ पर समवाय |